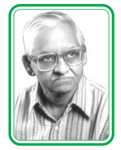

(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ
M.Sc., Ph.D.

वर्ष-24 | सितम्बर-2014 | अंक-9

ध्यान शिविर में आप सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

दि० 13, 14 व 15 सितम्बर, 2014 (शनिवार, रविवार, सोमवार)
पंजाबी धर्मशाला (राजगुरु मार्केट), आर्य बाजार, हिसार

'सुखं में भूयाद् दुःखं में मा भूत्'

सुख मुझे प्राप्त हो और दुःख न हो; किंतु इसका सच्चा, खरा, ठोस और निर्दोष उपाय, तो भक्ति ही है। आज का भक्तिहीन संसार यदि चाहता है कि वह सुखी और शान्त हो; तो उसे भक्ति तत्व की महत्ता और उपादेयता को समझना चाहिये। तभी वह हिंसा, क्रूरता और अन्याय से अपना पीछा छुड़ाकर; प्रेम, सहानुभूति और न्याय के वातावरण का निर्माण कर सकता है। एकमात्र भक्ति ही व्यष्टि और समष्टि के आत्मयजन और विश्व सेवा की सत्साधना है। 'भक्ति' और 'भक्त' शब्दों का अर्थ ही 'सेवा और सेवक' अथवा 'साधना और साधक' है। यदि वह आन्तरिक, पूर्ण और निर्दोष परमार्थमूलक सच्चा आत्मलाभ चाहता है तो उसे ईश्वरभक्ति के मार्ग को अपनाना चाहिये।

(श्रीराम निवास शर्मा)

प्रकाशक
ध्यान सत्संग सभा
पंजीकरण संख्या : 280/2013
हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346
Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

(1936-2009)

परमात्मा की भक्ति

(Worship of God)

✍ डॉ० शम्भूनाथ

परमात्मा का सन्धि विच्छेद है- परम+आत्मा। अर्थात् जीवात्माओं में सर्वश्रेष्ठ। हर मनुष्य का यह ज्ञान है कि हर जीवधारी के पास एक जीवात्मा और एक शरीर है। जीवात्मा सूक्ष्म है और शरीर स्थूल है। सारी शक्तियां सूक्ष्म हैं और स्थूल बिना शक्ति के व्यर्थ है। अत: सर्वश्रेष्ठ जीवात्मा अर्थात् परमात्मा का अंश, सूक्ष्मतम स्थान में निवास करने वाला जीव है। स्पष्ट है कि परमात्मा अवतार के रूप में भले ही शरीर धारण करता है, परन्तु वह शरीरधारी नहीं है।

हर जीव का ज्ञान उसकी चेतना की अवस्था के अनुसार होता है।

छोटी चेतनाओं के अनुभव में स्थूल, सरलता से आ जाती हैं। परन्तु सृष्टि की बड़ी शक्तियां सूक्ष्म होती हैं। अत: मात्र ऊँची चेतना प्राप्त जीवों के अनुभव में तो ये शक्तियां आ जाती हैं, परन्तु साधारण चेतना के जीवों के अनुभव में नहीं आतीं।

जीवात्माओं में मात्र मनुष्य के शरीर में ऐसी जीवात्माओं का वास है, जो अपने में कर्म करके अपनी चेतना बढ़ाते चले जाएं। चेतना बढ़ते-बढ़ते जब जीवात्मा परम अवस्था को प्राप्त कर लेगी। तब वह परमात्मास्वरूप चेतना कहलाएगी।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि हर मनुष्य, अपने को सूक्ष्म कर्मों के माध्यम से परमात्मास्वरूप बनाने में कभी न कभी, अवश्य सफल होगा।

समाज में हम देखते हैं कि हर पुत्र का कोई न कोई पिता है, हर पुत्र को कभी न कभी पिता अवश्य बनना है। परन्तु ऊपर हमने देखा कि शरीरधारी जीव दो अस्तित्वों का बना है-शरीर और जीवात्मा। इन दोनों अस्तित्वों की दृष्टि से हर बच्चे को कभी न कभी पिता अवश्य बनना है। शारीरिक दृष्टि से, मात्र आयु बढ़ने के साथ साथ एक समय आता है; जब बच्चे में पिता बनने के गुण शारीरिक स्तर पर आ जाते हैं। और तभी समाज उन बच्चों के विवाह के विषय में सोचना शुरू करता है। शरीर स्थूल है; और स्थूल ज्ञान के लिये उच्च स्तर की चेतना की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसी कारण ऊपर बताया हुआ ज्ञान, इतना साधारण ज्ञान है कि यह ज्ञान तो हर व्यकित को है। शास्त्र में कहावत है-

'यथे पिण्डे तथे ब्रह्माण्डे'

शरीर के अन्दर के सूक्ष्म पर्तों को पिण्ड कहते हैं। और शरीर के बाहर स्थूल क्षेत्र को ब्रह्माण्ड कहते हैं। ऊपर की कहावत का अर्थ है कि

> **जो सूक्ष्म पर्तों में नहीं होता, उसका स्थूल पर्तों में होना सम्भव नहीं है।**

इस तरह स्पष्ट है कि यदि शरीरधारी जीव का शरीर समय आने पर, पितास्वरूप हो जाता है तो यह भी निश्चित है कि समय आने पर जीवात्माएं, जो कि परमात्मा के बच्चे हैं, पितास्वरूप अवश्य हो जाएंगी। जीवन का यह ज्ञान जीवात्माओं और आत्मा से सम्बन्धित है। इसलिये साधारण चेतनाओं को यह ज्ञान प्राप्त नहीं है; और हर व्यकित को इस पर विश्वास भी नहीं है।

परमात्मा अनन्त है। इसी कारण उनके अंश अर्थात् बच्चे भी अनन्त हैं। बच्चों को जीव या जीवात्मा कहते हैं। परमात्मा और आत्मा पर्यायवाची शब्द हैं। जीवात्माओं को आत्मस्वरूप होना है।

> **प्रकृति में हर बदलाव के लिये किसी न किसी संगत की आवश्यकता होती है। संग के प्रभाव से प्रकृति में बदलाव आते हैं। जीवात्माएं आत्मस्वरूप होने की ओर अग्रसर हों, इसके लिये उन्हें आत्मा के संग होना पड़ेगा।**

सन्त तुलसीदास के अनुसार, यह विश्व अर्थात् ब्रह्माण्ड और पिण्ड का क्षेत्र, कर्म प्रधान है। अत: आत्मस्वरूप होने के लिये सूक्ष्म क्षेत्र में कर्म होना आवश्यक है। हम यह भी अच्छी तरह से जानते हैं कि शरीर के अन्दर सूक्ष्म क्षेत्रों में सब कुछ होता है, किया कुछ भी नहीं जा सकता। अर्थात् शरीर के सूक्ष्म क्षेत्र में मात्र 'होनी' की शक्ति कार्यरत है।

होनी में विश्व का ज्ञान है।

होनी हर समय हो सकती है; और किसी भी स्थान पर हो सकती है। सभी परमात्मा के विषय में भी यही जानते हैं कि परमात्मा तो हर कण में व्याप्त है। इसीलिये लेखक ने सभी साधकों को ईश्वर का दर्शन 'होनी' में करने का अभ्यास करने का परामर्श दिया है।

ऊपर हमने देखा कि आत्मस्वरूप होने के लिये जीव को परमात्मा का संग चाहिये। परमात्मा के संग का अर्थ है-होनी का संग।

आज के समाज में हम जीवन को मन कहते हैं।

मन को होनी की शक्ति के प्रभाव में कुछ समय नित्य रखें, जिससे होनी की शक्ति का संग उसे मिल सके।

> **अभ्यास के माध्यम से मन को सूक्ष्म पर्तों के होने की शक्ति का संग मिलेगा और इस शक्ति की प्राप्ति के लिये, कर्म ही परमात्मा की भक्ति है।**

अब साधकगण समझ गए होंगे कि यही सिखाया हुआ, ध्यान का रास्ता है।

परमात्मा की भक्ति की आवश्यकता हर मन को है।

जो मन जीवन में जिस चीज का भक्त हो जाता है, वह अपने आपको भक्ति के क्षेत्र में अधिक से आधिक समय के लिये रखता है। इस तरह लेखक हर साधक को बताना चाहता है कि

> **ध्यान का अभ्यास ही परमात्मा की भक्ति का रास्ता है। मात्र इस रास्ते पर चल कर वह अपने को आत्मस्वरूप होने की ओर अग्रसर कर सकता है।**

समाज में हर मनुष्य को ईश्वर की शक्ति प्राप्त करने हेतु तीन रास्ते दर्शाये जाते हैं। उन्हें समाज कर्म-काण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञान-काण्ड के नामों से जानता है। हमने ऊपर देखा कि बिना कर्म के जीवन में कुछ भी सम्भव नहीं। समाज कर्म-काण्ड की साधना उन्हें कहती है, जो मात्र स्थूल कर्मों द्वारा किये जाते हैं।

कर्म केवल मन करता है।

स्थूल कर्म उन कर्मों को कहते हैं, जिन कर्मों को पूरा करने के लिये मन इन्द्रियों की मदद लेता है। सूक्ष्म कर्म वे होते हैं, जिनमें मात्र मन का विचरण बिना इन्द्रियों की मदद के होता है।

सृष्टि के आदिकाल को सतयुग कहते हैं। सत्-परमात्मा की शक्ति; अर्थात्

आन्तरिक क्षेत्र की शक्ति है। आन्तरिक क्षेत्र अद्वैत का क्षेत्र है। अद्वैत के क्षेत्र का विस्तार हुआ; और इस तरह द्वैत जगत की स्थापना हुई। परन्तु कर्म सत् के बिना असम्भव है।

सत् का भण्डार ही परमात्मा है।

अर्थात् कर्म करने वाला मात्र परमात्मा या परमात्मा का अंश है। गीता में कहा गया है कि

> **हे अर्जुन! धर्म धारण करने योग्य कर्म हैं; और मात्र मैं जानता हूं कि धारण करने योग्य कर्म क्या हैं? इसलिये जो मैं कहूं तू उसे कर।**

महाभारत के युद्ध में एक ऐसा समय आया, जब अर्जुन और कर्ण का युद्ध शुरू हुआ। युद्ध के समय अचानक कर्ण का रथ का एक पहिया पृथ्वी में धंस गया। उसी समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आज्ञा दी कि तू कर्ण पर बाण चला। अर्जुन के मन में एक संशय उठा। और उसने कृष्ण से प्रश्न किया कि क्या इस समय निहत्थे व्यक्ति पर बाण चलाना अधर्म नहीं होगा? उस समय कृष्ण ने उत्तर में कहा

> **धारण करने योग्य कर्म ही धर्म है। और पूरे संसार में केवल एक मैं जानता हूं कि धारण करने योग्य कर्म क्या हैं? इसलिये हे अर्जुन! तू मात्र मेरी आज्ञाओं का पालन कर।**
>
> **हर पुत्र को पितास्वरूप होना है।** हर जीवात्मा को आत्मस्वरूप होकर पितास्वरूप होना है। आत्मस्वरूप होने के लिये उसे समय निकाल कर 'होनी' के क्षेत्र में अपने मन को रखकर, सूक्ष्म; और सूक्ष्म क्षेत्र में मन का विचरण होने देना है, करना नहीं है।
>
> **द्वैत जगत का जीवन दो विपरीत शक्तियों से चलता है। एक 'होनी की शक्ति' और दूसरी 'करनी की शक्ति'। होनी की शक्ति, परमात्मा की शक्ति है।**

ज्यों-ज्यों मन का होनी के क्षेत्र में रहने का समय बढ़ता है, त्यों-त्यों जीवात्मा में होनी की शक्ति अर्थात् आत्मशक्ति पिरोने लगती है। ज्यों-ज्यों आत्मशक्ति पिरोती है, त्यों-त्यों जीवन होनी की शक्ति से चलने लगता है; और जीवन में बुद्धि की

शक्ति का प्रयोग कम होने लगता है। बुद्धि की शक्ति से कर्म थकावट से भरे होते हैं और होनी द्वारा कर्म बिना थकावट के होते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि; ज्यों-ज्यों आत्मशक्ति मन में अधिक पिरोती है, मनुष्य के नित्य जीवन के अधिकतर कार्य बिना किये, होने लगते हैं; और मन में इस अनुभूति की जागृति होने लगती है कि थकावट भरे कर्म जीवन में कम होते जा रहे हैं। इसीलिये सन्त तुलसीदास ने लिखा है –

जो इच्छा करिहौं मन माहीं।
हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं॥

स्पष्ट है कि होनी की शक्ति ही हरि का प्रसाद है। जब जीवात्मा, आत्मस्वरूप हो जाती है; अर्थात् हरि के प्रसाद से तर-बतर हो जाती है, तब वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये किसी भी थकावट से भरे स्थूल कर्म की मदद नहीं लेती। और शेष जीवन होनी की शक्ति, अर्थात् परमात्मा की शक्ति के माध्यम से चलने लगता है। इसी अवस्था को गीता में ईश्वर पर समर्पण की अवस्था बताई है। भ० गीता के अन्तिम अध्याय तक अर्जुन को तर्क-वितर्क से कुछ नहीं मिल सका और वह श्री कृष्ण से कहता है कि मैं आपको सर्वश्रेष्ठ मानकर कहता हूं कि मुझे आज्ञा दें कि मुझे क्या करना है? उत्तर में श्रीकृष्ण (18.66) में कहते हैं; तुझे कुछ नहीं करना है; केवल मुझ पर समर्पित हो जा।

तज धर्म सारे, एक मेरी ही शरण को प्राप्त हो।
मैं मुक्त पापों से करूंगा, तू न चिन्ता-व्याप्त हो॥

Surrendering all your duties to Me totally
Take thou refuge in Me only,
I shall absolve you of sins and sinful thought,
I am thy protector, worry you not.

लेखक बताना चाहता है कि यहां मुझ (Me) का अर्थ है कृष्ण।

> **और अनुभव के क्षेत्र में कृष्ण का रूप है 'होनी'। अर्थात् जो 'होनी' पर समर्पित हो गया; वह कृष्ण पर समर्पित हो गया।**

उपासना का सन्धि विच्छेद है – उप + आसन। उप का अर्थ है-समीप। अर्थात्

परमात्मा के समीप का स्थान। इधर कुछ दिनों से लेखक साधकों को यह समझाने में लगा हुआ है कि

ईश्वर के समीप का स्थान है 'होनी का क्षेत्र'।

अत: परमात्मा पर समर्पित होने के लिये उसे नित्य कुछ समय अपने मन को 'होनी' में रखने का अभ्यास करना है; अर्थात् कुछ नहीं करना है। यही आराम (Relax) है। मन की इस अवस्था से शरीर को आराम मिलता है। आराम का सन्धि विच्छेद है- आ + राम। अर्थात् ईश्वर को अपने पास बुलाने का कर्म। इन कर्मों के अभ्यास से; अर्थात् ध्यान के अभ्यास से मन में तीन तरह की शक्तियां जागृत होती हैं; जिन्हें सत्-चित्त-आनन्द कहते हैं। **सत्;** परमात्मा का तत्व है, जो मन में पिरोकर जीव को आत्मस्वरूप की ओर अग्रसर करता है। **चेतना;** मन के आंखों की शक्ति है और

धीरे-धीरे मन अपनी आंखों द्वारा माया रहित संसार को देखने लगता है; और शारीरिक आंखों से मायावी संसार को देखना छोड़ने लगता है। चेतना में ज्ञान है। उभरती हुई चेतना में उभरता हुआ जीवन का ज्ञान है। पूर्ण चेतना में जीवन का पूर्ण ज्ञान है।

आनन्द; जीवन का वह सुख है, जिसे मन बिना किसी ज्ञानेन्द्रिय के अनुभव करता है। इस तरह से जीवन में सत्-चित्त-आनन्द के माध्यम से, वह सुख मिल जाता है-जिससे मन पलभर के लिये भी अलग नहीं होता। अब साधक गण देख सकते हैं कि

जीवन का ज्ञान तो केवल चेतना में है, बुद्धि में नहीं। बुद्धि में मात्र विषयों का ज्ञान है और मनुष्य जीवन का ज्ञान बुद्धि में ढूंढता है, यही माया (Ignorance) है। इसीलिये बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति ही जीवन में दु:खी रहता है।

ऊपर लेखक ने बताया कि आदिकाल का युग; सतयुग था। सत्युग में अधिकतर मनुष्य सत् से तर बतर थे; अर्थात् मनुष्य का मन सत् से तर-बतर था। और इस अवस्था में जब वह इन्द्रियों में प्रवेश कर, स्थूल क्षेत्रों में विचरण करता था; तब स्थूल क्षेत्रों को भी भरपूर सूक्ष्म क्षेत्रों की शक्ति मिल जाती थी। अत: उस समय के व्यक्तियों को लम्बी आयु तक जीवित रहने की इच्छाएं पूरी हो जाती थीं।

उनके शरीर भी आज के शरीर की तुलना में बहुत लम्बे-चौड़े और शक्तिशाली थे। वह एक ऐसा युग था, जब स्थूल कर्मों द्वारा भी परमात्मा की शक्ति स्थूल क्षेत्रों में बहुत तेजी से प्रगट हो जाती थी। अत: सत्युग में लम्बे-लम्बे जाप और लम्बी-लम्बी तपस्याएं साधारण मनुष्य भी करने लगे। कहने का अर्थ है; वह युग कर्मकाण्ड का युग था। सत्युग का यह प्रभाव, त्रेता-युग और द्वापर-युग पर भी काफी था। महात्मा बाल्मीकि का जन्म त्रेता युग में हुआ। और पृथ्वी का इतिहास यह बताता है कि उनसे बड़ा पापी तो इस पृथ्वी पर पैदा ही नहीं हुआ। उन्हें जाप की साधना मिली। पाप बहुत अधिक होने के कारण उन्होंने राम के उल्टे नाम मरा का जाप आरम्भ किया।

उल्टा नाम जपत जग जाना।
बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥

इस जाप में बुद्धि का प्रयोग न होने के कारण वे जाप के माध्यम से परमात्मा के समीप चले गए, अर्थात् उपासना को प्राप्त हो गए। ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि कबीर जी के अनुसार-

जब मैं था, तब हरि नाहीं।
जब हरि है, तब मैं नाहिं॥

बुद्धि का प्रयोग न होने के कारण जाप करते-करते महात्मा बाल्मीकि बहुधा आन्तरिक क्षेत्र में चले जाते थे और वे भूल जाते थे किवे जाप कर रहे हैं।

मात्र उपासना की साधना द्वारा हम अपने पिछले पापों को काटने में समर्थ हैं।

अत: पापी बाल्मीकि के सारे पाप कट गए और वे महात्मा बाल्मीकि हो गए। परन्तु सत्युग में यह सम्भव केवल इसलिये हुआ; क्योंकि उस समय के मनुष्यों की आयु लाखों साल की होती थी। त्रेता-युग में ब्रह्म का अवतार, राम के रूप में हुआ। उनके जन्म से हजार साल पहले बाल्मीकि साधना द्वारा अपने सारे पापों को काटकर, इतने बड़े महात्मा हो चुके थे कि वे त्रिकालदर्शी थे। राम के जन्म के हजार साल पूर्व जो कुछ भी होने वाला था, सब कुछ लिख दिया।

त्रेतायुग में जामवन्त थे और राम से उनका मिलन हुआ। जामवन्त ने जब उनसे

प्रार्थना की, कि वे उनका उद्धार कर दें; तब राम ने उनसे कहा कि वे प्रतीक्षा करें; वे द्वापर में फिर अवतार के रूप में आयेंगे, और तब उनका उद्धार करेंगे। आध्यात्म का इतिहास यह दर्शाता है कि द्वापर में भी लाखों साल के जीव थे।

द्वापर के पश्चात् कलयुग आया; और कलयुग के सर्वश्रेष्ठ महात्मा, सन्त तुलसीदास के नाम से जाने जाते हैं। उनकी आत्मस्वरूप चेतना ने उन्हें दर्शाया कि द्वैत जगत बदलने वाला जगत है। अत: इस बदलने वाले जगत के समाज के मनुष्यों की साधना में बदलाव प्रकृति के नियम का समर्थन करती है। उन्होंने रामायण में लिखा

कलयुग केवल नाम अधारा

समाज कोई हो। जीव आत्मस्वरूप होने तक कोई पाप नहीं करे, यह सम्भव नहीं है।

आत्मा की ताकत सूक्ष्मतम क्षेत्र की शक्ति है।

इन दो कारणों से पृथ्वी पर जन्म लेने वाले हर व्यक्ति को उपासना की साधना में तो आना अति आवश्यक होगा; भले ही वह कर्मकाण्ड में न आए। कलयुग के साधारण मनुष्य की चेतना बहुत निम्न स्तर की होती है। अत: इन्द्रिय जगत की माया (Ignorance) का प्रभाव अधिक होता है।

आध्यात्मिक इतिहास से वह कर्म-काण्ड की साधनाओं का ज्ञान ले लेता है। परन्तु चेतना निम्न स्तर की होने के कारण यह समझने में असमर्थ है कि यह कर्मकाण्ड की साधनाएं कलयुग के लिये नहीं हैं।

केवल एक बार ईश्वर का नाम लेकर आत्म-क्षेत्र की ओर मन का विचरण कराकर 'होनी' पर समर्पित हो जाना; अर्थात् ब्रह्म पर समर्पित हो जाने की कला का अभ्यास ही लेखक ने सारे साधकों को दर्शाया और इस लेख में यह दर्शाया कि यह रास्ता निर्गुण निराकार ब्रह्म की भक्ति का रास्ता है।

समाज के अधिकतर मनुष्य, ब्रह्म के किसी अवतार के नाम या रूप की भक्ति, इन्द्रियों के माध्यम से करते हैं। और प्राप्त इन्द्रिय सुख में झूमते हैं; और वह भी कलयुग की छोटी-सी आयु के थोड़े से समय में। यही कारण है कि अधिकतर मनुष्यों को सफलता नहीं मिलती। ❑

ध्यान द्वारा – भगवान का प्राकट्य

– श्री राकेश गर्ग (098967-89678)

जब मन; 'मैं' (कर्तापन) से रहित होकर हरि (भगवान) के क्षेत्र में विचरण करता है-तब 'हरि' की शक्ति मन में आ जाती है, क्योंकि उस समय मन अपना अहसास खो देता है। जब वही मन, 'मैं' (कर्तापन) के साथ वापिस आता है और बुद्धि के साथ मिलकर क्रियाओं के क्षेत्र में उतरता है – तो भगवान् की शक्ति मन को ठीक दिशा देती है।

यह शक्ति मन की नींव (Foundation) है। जब नींव मजबूत है; तो मन का आधार (सत्) यानी आगे बढ़ने का गुण, ईश्वरीय शक्ति है।

यह ईश्वरीय शक्ति मन में निरन्तर बढ़ते हुए बुद्धि का विवेक और क्रियाओं को सफलता प्रदान करती है। क्योंकि जीवन में सफलता देने वाली शक्ति (फल की शक्ति) बढ़ती हुई ईश्वर की शक्ति (विभूति), ही ईश्वर का प्राकट्य है। इसलिए कहते हैं कि ध्यान द्वारा भगवान का प्राकट्य मन में हो जाता है; जो हमेशा आगे ही बढ़ता है, कभी गायब नहीं होता; चाहे हम भगवान को भूल भी जाएं, पर भगवान हमें कभी नहीं भूलता। इसलिए नियमित ध्यान का अभ्यास बहुत जरूरी है। ध्यान के अभ्यास (अर्थात् साधना) में ढिलाई (नागा) नहीं आनी चाहिए। ❑

प्रकृति, परमात्मा की शक्ति है

—श्री महेन्द्र सिंह जांगड़ा (094676-07109)

परमात्मा शक्तिशाली एवं महाकाल का भी काल है। कालातीत है। धरती, पानी, तेज, हवा, आकाश, मन, बुद्धि और अहं – ये आठ स्थूल से सूक्ष्म, प्रकृति है। प्रकृति में बदलाव आते रहते हैं, परन्तु परमात्मा अथवा आत्मा में कोई बदलाव नहीं आता, ये स्थिर हैं।

भगवान्, अपने आप से आपने आप को जानते हैं। यह जानना स्वाभाविक है। यह जानना कारण निरपेक्ष (Indirect) है। ठीक इसी तरह जीवात्मा को भी अपने आप से, अपने आप को जानना है। यह जानकारी भी कारण निरपेक्ष (Indirect) है। जीवात्मा अर्थात् स्वयं को भी भगवान् की तरह ही जानना है।

'असीम' होने के कारण; इनको बुद्धि और ज्ञान इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता। बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों की जानकारी केवल संसार को जानने तक ही सीमित है। संसार की जानकारी कारण सापेक्ष (Direct) है।

स्वयं को स्वयं जान सकता है। जानने (अर्थात् ध्यान) के समय जीवात्मा-परमात्मा, एक हो जाते हैं। जब हम 'ध्यान योग' में बैठते हैं, तब हमारे अन्दर के विचार दृष्य हैं, मन द्रष्टा है और बुद्धि दर्शन है।

'ध्यान' के समय दृष्य, द्रष्टा और दर्शन; तीनों द्वारा हमारे अन्दर एक सूक्ष्म क्रिया होती है। इसे निष्काम कर्म कहते हैं।

धीरे-धीरे काफी समय के नियमित अभ्यास द्वारा दृष्य, द्रष्टा और दर्शन, तीनों एक हो जाते हैं। जीवात्मा और परमात्मा एक हो जाते हैं; और परमात्मा की शक्ति मन, बुद्धि और शरीर, तीनों को मिल जाती है। इन तीनों का विकास होता है। इसे परमात्म की शक्ति द्वारा क्रिया का होना कहते हैं।

परमात्मा, सच्चिदानन्द (सत् + चित्त + आनन्द) है। जब हम 'ध्यान-योग' में बैठेंगे, पहिले आनन्द (Bliss) आएगा। काफी समय के बाद चित्त यानी होश (Consciousness) खुल जाएगा।

जैसा संग, वैसे उसके गुण। जैसे आग के पास बैठने से गर्मी मिलेगी, पानी के पास ठण्डक मिलेगी। इसी तरक उपासना (उप + आसन) में अर्थात् परमात्मा के पास बैठने से परमात्मा का गुण (सत्), हमारे अन्दर आएगा। सत्; परमात्मा (स्वयं) है। परमात्मा; अखण्ड शक्ति, अखण्ड ज्ञान, अखण्ड स्वास्थ्य, अखंड आनन्द और अखंड प्रेम के भंडार हैं।

मन में शक्ति आएगी। मन का डर खत्म होगा। हीनता समाप्त होगी। विचार सकारात्मक होंगे। मन शक्तिशाली बन जाएगा। चिन्ता नहीं रहेगी। सबको प्रेम करोगे।

बुद्धि जो भी निर्णय लेगी, ठीक लेगी। यादगार बढ़ जाएगी। बुद्धिमता बढ़ जाएगी। आचार, व्यवहार तथा चरित्र अच्छा हो जाएगा। भगवान् में विश्वास का उजागर होगा। आप ज्ञान बाण बन जाएंगे।

शरीर हल्का फुल्का होगा। शक्तिशाली हो जाओगे। रोग समाप्त हो जाएंगे।

अधिक देर तक काम करने की शक्ति बढ़ जाएगी। थकावट जल्दी समाप्त हो जाएगी। तनाव (Irritation) नहीं होगा; तथा Blood Pressure ठीक हो जाएगा। नीन्द अच्छी आएगी और कम नींद की आवश्यकता पड़ेगी।

ये सब आनन्द की बढ़ोतरी के साथ, परमात्मा के गुण आप में आ जाएंगे। मन पर कर्मों की धूल जमी है। 'ध्यान-योग' द्वारा धूल को मिटा दो। परमात्मा की अनुभूति स्वयं हो जाएगी। यह 'ध्यान-योग' की ब्रह्म-विद्या, सभी विद्याओं का राजा है। इसे सुनना आसान, करना आसान, कोई परिश्रम नहीं; कठोर नहीं; और प्रत्यक्ष फलदायक है। यह विद्या वेद और विज्ञान द्वारा प्रमाणित है। विज्ञान का मतलब, आप में स्वयमेव बदलाव आवेगा। कर के देखो, दस दिन में नतीजा (Result) दिखाई देगा।

वेद व्यास जी के अनुसार : धर्म का सार सुनो और सुन कर धारण करो। जो व्यवहार अपने लिए नहीं चाहते, उसे दूसरों के प्रति मत करो। अच्छा कार्य करने में पलभर की देरी मत करो; और बुरा काम होने से पहले उसे सौ बार सोच लेना चाहिए। कोई भी मनुष्य जन्म से महान नहीं होता, केवल कर्म से महान होता है।

'ध्यान-योग' (परमात्मा का योग), महान बनने का तरीका है। सारे वेद, पुराण और उपनिषद् पढ़कर भी; यदि जानने योग्य भगवान् को नहीं जाना (Realized), तो वह उन पुस्तकों का व्यर्थ में ही बोझा ढो रहा है।

जब हम देखते हैं, तब हम सोचते नहीं। और यदि सोचते हैं, तो हम देखते नहीं। केवल अंदर देखते रहो; तो धीरे-धीरे विचार स्वयमेव समाप्त हो जाएंगे।

जीवन रहते हुए, यदि इच्छा चली गई; तो मुक्ति। यदि इच्छा के रहते मृत्यु हो गई, तो दोबारा जन्म होगा। ❑

सही और गलत

- डॉ. बलदेव राज नाशा

आज के समाज का प्राणी, सुबह से शाम तक यह जानने और समझने में समय नष्ट करता चला जा रहा है कि क्या सही है; और क्या गलत है? सही जानने की शक्ति का आधार (Foundation) भगवान की शक्ति का उभरना है।

यदि भगवान की शक्ति कम उभरेगी तो सारी बौद्धिक धारणाओं के बावजूद, हाथ पैर अपने आप गलत दिशा में चले जाएंगे। सही रास्ता चुनें, तो नतीजा सही आएगा।

आत्मिक शक्ति तो बौद्धि स्तर से ऊपर की शक्ति है। यदि हम अखण्ड शक्ति उभारने पर लग जाएं, तो उभरी हुई अवस्था के आधार पर जीवन के सारे पहलुओं में, सब कुछ सही होने लगेगा।

निष्क्रियता के अभ्यास (Meditation) द्वारा जो लोग अपने जीवन में अखण्ड शक्ति उभार कर अपनी जीवातमा का उत्थान कर रहे हैं, उनकी स्वाभाविक क्रियाओं में धीरे-धीरे सही रास्ते पर चलने की शक्ति पैदा होने लगती है। उन्हें क्रियाओ के भिन्न-भिन्न क्षेत्र का ज्ञान नहीं चाहिए। उनकी स्वाभाविक क्रियाएं उनके संस्कारों को क्षीण करने में मदद करती हैं।

ध्यान के अभ्यास से उभरी हुई अखण्ड शक्ति ही उनके मन को उनके स्वभाव के माध्यम से सही खाने-पीने और सही क्रियाओं का मार्गदर्शन करेगी।

यह सत्य जब मन में उभरने लगता है, तो मन खान-पान के क्षेत्र में बदलने लगता है। उभरी हुई अखण्ड शक्ति वाले मनुष्य को जो खाना अच्छा लगता है, उसे सात्विक खाना कहते हैं। केवल खाना बदलकर अपने अन्दर कोई भी सत्य को नहीं उभार सकता।

जीवात्मा सब के अन्दर है। उसकी शक्ति हमारे अन्दर से उभर कर जीवन में अन्तःकरण के सुख के रूप में प्रगट होती है।

जिस समय यह शक्ति उभर रही हो; उस समय यदि बाहर के सारे सुख की दुनियां में किसी तरह ताला लग जाए, तो मन अपने स्वभाव से अन्दर के सुख की ओर खिंच जाएगा। मन सुख का भूखा है और अन्तःकरण उसका निवास स्थान है। इसलिए मन अन्दर के सुख में डूबने लगेगा।

साक्षात् निराकार ब्रह्म से निकले सुख में मन लगने के कारण, यह निराकार ब्रह्म का ध्यान होगा।

यह शक्ति, जिसे हम अन्दर के सुख (Bliss) के रूप में पहचानते हैं, अनुभव तो

की जा सकती है; लेकिन किसी दूसरे व्यक्ति को ज्ञानेन्द्रियों या कर्मेन्द्रियों की भाषा में बताई या समझाई नहीं जा सकती।

जिस विधि से अन्दर का सुख कम से कम समय में अधिक से अधिक उभारा जा सके, वहीं इश्वर के ध्यान की विधि होगी।

केवल जागृत अवस्था में ही यह सम्भावना हो सकती है कि हम अपनी स्वतन्त्र इच्छा के आधार पर कुछ ऐसा करें कि इस शक्ति को उभारने में निपुण होते चले जाएं; और हम जितना चाहें, उसे उतना उभार लें। ❑

जीवन क्या है ?

—श्री बाल कृष्ण गुप्ता (094676-93002)

जहां जीवन है, वहां महसूस करने वाला भी है। इस महसूस करने वाले को मन कहते हैं। मन के पास दो जगत हैं : क) आन्तरिक जगत और ख) बाहर का जगत। सुखी रहने के लिये दोनों जगत का ज्ञान होना जरूरी है। आज का समाज बाहर के जगत की चेतना का विकास तो कर रहा है, परन्तु आन्तरिक जगत की चेतना का रास्ता खो चुका है। परन्तु आन्तरिक जगत की चेतना, बाहर के जगत की नींव (Foundation) है। रेगुलर ध्यान पर बैठकर जीवन शक्ति (Energy) को मजबूत करें। बाहर के जगत के ज्ञान के लिये मन और बुद्धि दोनों इकट्ठे काम करते हैं। परन्तु आन्तरिक जगत के ज्ञान के लिये मन को शरीर और बुद्धि की जरूरत नहीं पड़ती। यदि हम किसी नाम अथवा रूप पर ध्यान टिकायेंगे तो यह प्रयास है। ध्यान (meditation) के लिए बन्धनमुक्ति अथवा प्रयासहीनता अति आवश्यक है। प्रयास द्वारा आन्तरिक जगत में बिचरण असम्भव है।

तप के साथ सेवा जरूरी है। ध्यान योग से शरीर स्वस्थ रहता है और आध्यात्मिक शक्ति मिलती है। सुबह का समय ध्यान के लिये उपयोगी है। बहुत बोलने से, ना बोलना बेहतर है। भक्ति ऐसे करें कि कोई दूसरा डिस्टर्ब ना हो। शान्त मन से हमें अन्दर से सही काम करने की प्रेरणा मिलती है।

घर में सभी सुविधायें हैं। यदि दूसरों पर निर्भर करना पड़े, तो ध्यान की साधना के लिये घर ही उचित स्थान है। ध्यान के लिये एकांत में आंखे बन्द करके अन्तर्मुखी होकर बैठना होता है। इसके बाद सब कुछ अपने आप होता है। ईश्वर

तो तुम्हारे भीतर हैं। जब चाहो एकान्त में आंखे मूंद कर बैठने से आप भगवान के पास पहुंच सकते हो। जो चाहो, बात कर सकते हो। जिन्दगी में भवन, पैसा, जायदाद बहुत इकट्ठी की; फिर भी सन्तुष्टि नहीं। ध्यान साधना से जुड़ा साधक, आनन्द में रहता है। ध्यान पर बैठने से सन्तोष धन मिलता है। सन्तोष ही जीवन है।❑

सम्पूर्ण जीवन का विशुद्ध क्षेत्र

– महर्षि श्री महेश योगी

जीवन तीन तत्वों का बना है। अध्यात्मिक तत्व, अक्षर तत्व और उस तत्व में जो ऋचाएं हैं, वेद हैं, प्रकृति के नियम हैं; वे नियम सृष्टि का निर्माण करते हैं। सृष्टि के निर्माण में पहले देवी देवताओं की सत्ता है। फिर वे देवी देवता सारे भौतिक जगत् का निर्माण करते हैं। जैसे यह फूल, पत्ता बहुत अच्छा बन गया; इसके बीच में क्या है? वह रस (Sap) है, जो चाहता है कि मैं हरी पत्ती बन जाऊँ। तो रस की इच्छा का एक क्षेत्र है और

> **दूसरा क्षेत्र है विशुद्ध रस का। रस के क्षेत्र को कहते हैं निर्गुण निराकार, अव्यक्त, अक्षर, अपरिवर्तन शाली विशुद्ध अध्यात्म तत्व। जहां इच्छा हुई, क्रिया हुई; वह इच्छा दिखती नहीं और क्रिया दिखती नहीं; परन्तु उसका स्पन्दन है। रस की सत्ता में एक स्पन्दन हो गया, एक लहर आ गयी और वह लहर है, देवता का प्रदर्शन। उसी को वैदिक भाषा में देवता-तत्व कहते हैं।**

इच्छा करने वाला दैवी क्षेत्र; और जिस क्षेत्र में इच्छा हुई है, वह निर्गुण, निराकार अध्यात्मिक क्षेत्र है। भौतिक, दैवी और अध्यात्मिक; तीनों क्षेत्र अपनी चेतना में स्पष्ट रूप से हैं। तो फिर क्या करते हैं?

> **अपनी आध्यात्मिकता को, अपनी चेतना में जगाते हैं। मन की लहरों को शान्त करते-करते भावातीत हुआ; फिर यौगिक चेतना बन गयी। यौगिक चेतना का स्पन्दन आरम्भ हुआ; यही सिद्धियों का रहस्य है; सोचा; और हो गया।**

तो जब यह विद्या अपने देश में है, तो यह बड़ी अमोद्य विद्या है। इस विद्या के विद्यार्थी होने चाहिएं; और वे विद्यार्थी इस विद्या के पण्डित बनने चाहिएं। जैसे

मनुष्य की चेतना में दैवी सत्ता जागृत होगी, उसकी इच्छा सतोगुणी होगी। वह बराबर चारितार्थ होगी, सफल होगी :-

जो इच्छा करिहौ मन मांही,
प्रभु प्रताप कछु दुर्लभ नाहीं।

इच्छा करने का आधार बनाना चाहिए। 'भावातीत ध्यान' के द्वारा शुद्ध 'भावातीत चेतना' में स्थित होकर अभ्यास का सारा आधार। उस आधार को क्रियात्मक रूप से और प्रयोगात्मक रूप से सिद्ध कर लेना चाहिए। अब इस सिद्धांत को प्रमाणित तो कर लिया है, अपने अनुभव में। तो इससे मालूम हो गया कि अब योग की जो गति है, वह अनन्त गति है। वह जो प्रार्थना करते हैं।

'अष्ट सिद्धि नव निधि के दाता'

इस तरह सर्वसमर्थता का जागरण अपनी चेतना में करते हैं। यह अष्ट सिद्धि नव निधि का मूलाधार, 'भावातीत चेतना' है। वह अक्षर सत्ता और उसी में सारा वेद, प्रकृति के सारे नियम को पूर्ण रूप से अपनी चेतना में जागृत करते हैं; और फिर व्यवहार क्षेत्र में उतरते हैं। एक तो प्रयोगात्मक सिद्धि और दूसरा बुद्धि से पूरी तरह समझ लेना। तो बौद्धिक सन्तोष और क्रियात्मक संतोष दोनों तरह से, वैदिक विज्ञान को चरितार्थ कर के अपनी चेतना में सर्वसमर्थता और अजेय तत्व जागृत करना है। मानवीय चेतना में सर्वसमर्थता उत्पन्न करने के लिए अनादि काल से जो प्रमाणित साहित्य बना है, वह सब अपने अनुभव में ला के, उसे बौद्धिक रूप से समझ लेना चाहिए। यह 25 वर्ष के अन्दर हो जाना चाहिए। 25 वर्ष के अन्दर पूर्ण ज्ञानी, सिद्ध कर्मठ होना चाहिए। जो ज्ञानी होगा वही कर्मठ होगा। तो कर्म, योग, ज्ञान और भक्ति, ये अलग-अलग गुण हैं।

> **ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति; दोनों एक ही सत्ता हैं। शुद्ध ज्ञान की सत्ता के भीतर क्रिया शक्ति निहित है। आज के वैज्ञानिक सिद्धान्तों में भी एक यह सिद्धान्त है कि ज्ञान में क्रिया शक्ति है। जहां ज्ञान होगा, वहीं व्यवस्था करने की योग्यता होगी।**

जहां ज्ञान है वहीं क्रिया शक्ति है। सारे दैवी जगत् उसमें रहते हैं। जब सारे दैवी जगत् उसमें रहते है, वैसी हमारी चेतना स्थायी रूप से हो जायेगी; तो फिर सारी शक्तियों पर हमारा सहज स्वाभाविक अधिकार हो जायेगा। जैसे बालक का

अधिकार माता पर होता है, बालक का अधिकार पिता पर होता है; जैसे वह कहेगा वैसा माता को करना ही पड़ेगा। इसलिए, कि वह प्रेम करती है। और प्रेम, जो बाहर कहीं भी आजीविका के लिए किसी का द्वार नहीं खटखटाना पड़ेगा।

10-12 वर्ष के लड़कों को लोग उनको विद्यार्थी नहीं कहेंगे। वे तो विश्व-प्रशासन के कुटुम्ब में आ गये। वे विश्व-प्रशासन के अधिकारी बनेंगे। तो वे अध्ययन करेंगे, लेकिन अध्ययन करते हुए जो विद्या-ग्रहण करेगा, उस विद्या में जो ज्ञान है, उस ज्ञान में क्रिया-शक्ति है; तो जैसे-जैसे उनका ज्ञान बढ़ता जायेगा, वैसे-वैसे क्रिया-शक्ति भी बढ़ती जायेगी। दस पन्द्रह वर्ष में पूर्ण ज्ञानवान् होकर पूर्ण क्रिया-शक्ति पर उनका अधिकार होगा। सारी प्रकृति की सत्ताएं, सारी दैवी सत्ताएं, उनकी दिशा किस दिशा में वे देखते हैं; उसकी बाट जोहेंगी। जिधर देखेगे, वहीं प्रकाश होगा। जिधर देखेंगे, वहीं हवा चलेगी। वहीं सूर्य उदय होगा। जैसा चाहेंगे, वैसा ही होने लगेगा।

तो ये विश्व प्रशासन के अधिकारी होंगे :- जैसे ही दैवी जगत् के भिन्न-भिन्न साधन उनकी चेतना में जागते जायेंगे, वैसे-वैसे उनकी चेतना से सतोगुण प्रवाहित होकर सारे वायुमण्डल को पवित्र करने लगेगा; और यही कार्य है विश्व-प्रशासन का। विश्व-प्रशासन का एक मात्र कार्य है कि सामुहिक चेतना को सतोगुणी बनाये रखो। ऐसा प्रभाव समाज में हो कि सतोगुण फैला हुआ हो; तो उस सामुहिक चेतना में जागृत सतोगुण व्यक्ति की चेतना को, कभी भी तमोगुणी और रजोगुणी प्रधान नहीं होने देगा। अत: समाज में सतोगुण की प्रधानता पूर्ण रूप से जागृत रहे; यह विश्व प्रशासन के अधिकारियों का कार्य है।

तो जो दस बारह वर्ष के बच्चे आयेंगे और जैसे ही समाधि में जायेंगे, जैसे ही सिद्धियों का अभ्यास करेंगे, वैसे ही वे हवा में उड़ान करेंगे। जैसे-जैसे उनकी चेतना में सिद्धि-सूत्रों की जागृति होगी; वैसे वैसे समाज में स्वाभाविक रूप से सतोगुण की वृद्धि होगी। और सतोगुण की वृद्धि करना ही, विश्व प्रशासन का कार्य है।

वेद-विज्ञान-विद्यापीठ में वह देवताओं से बोलना सीखेगा; और देवताओं से बोलना सीखने के लिए वह अपने आपसे बोलना सीखेगा। आत्मा, आत्मा से बोलेगी; अर्थात् सर्वसमर्थ सत्ता से बोलेगी। तो देवताओं से बोलना सीखना

पड़ेगा, अर्थात् उस आत्म तत्व के स्तर पर; जिस आत्मा का जिसको ज्ञान है, जिस आत्मा का बोध है, जिस आत्मा में शुद्ध ज्ञान में अनन्त क्रिया-शक्ति निहित है; उस क्रिया शक्ति को जो जागृत कर सकता है, वह 'शोकरहित' (दु:ख से पार) हो जाता है। इसलिए कि जब तक क्रिया शक्ति में पूर्ण समर्थता नहीं होगी; जैसा करना चाहते हैं, वैसा नहीं होगा; तब तक तो दु:ख से उभरना कठिन है, असफलताओं से पार होना कठिन है और समस्याओं से पार होना कठिन है।

उस ज्ञान में व्यक्ति की चेतना जागृत होगी, जिस ज्ञान में क्रिया-शक्ति की पूर्ण सर्वसमर्थता है, वह जागृत होगी :- जैसा चाहेगा वैसा हो जायेगा। और फिर ये विद्यार्थी नहीं होंगे; ये विश्व प्रशासन के अधिकारी होंगे। इसलिए कि उनकी चेतना आध्यात्म रूप चेतना होगी :- वह चेतना होगी जिसमें -' यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदु:' सारा दैवी जगत् जिसमें निवास करता है, जिसमें जागृत रहता है, वह चेतना जागृत होगी और जागृत होकर स्थायी होगी। इनके वातावरण में, इनके वायुमण्डल में सत्व की वह जागृति होगी कि कोई भी प्रजा न दु:खी रहेगी, न गरीब रहेगी और न असफलताएं होंगी।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:ख भाग्भवेत्॥ ❑

मनुष्य का जन्म क्यों हुआ ?
जन्म का उद्देश्य और लक्ष्य क्या है ?

प्रस्तुति : श्री सत नारायण शर्मा (094161-64702)

संसार में केवल परमात्मा है। जो है, वही अनुभव में आता है; और उसी को सत् कहते हैं। जो अनुभव में नहीं अता; वो केवल कल्पना है। अर्थात् बुद्धि की उपज है।

परमात्मा पूर्ण है। परमात्मा प्रकट होने की शक्ति है। पूर्ण होने के कारण, वह अनन्त अपूर्णो में प्रकट हो सका है।

यह अपूर्ण, समाज में तीन अवस्थाओं में पाए जाते हैं - निर्जीव वस्तुएं, वनस्पति जगत और जीव। परमात्मा के संरक्षण में, जीवन का विकास हुआ; और समय आने पर उसने मनुष्य का रूप धारण किया।

मनुष्य के जीवात्मा की अवस्था ऐसी है, कि वो सूक्ष्म और स्थूल कर्म करने योग्य है और अपने कर्मों के आधार पर आगे का विकास करता है।

सन्त तुलसीदास के अनुसार, जीव परमात्मा का पुत्र है। परमात्मा पिता है। हर पिता की इच्छा है कि उसका बेटा उससे कम ना हो।

जीव भावातीत होकर, अपने में परमात्मा की शक्ति पिरोकर, अपने को परमात्मा-स्वरूप बना सकता है। यही जीवन का लक्ष्य है। अपने में परमात्मा की शक्ति पिरोना ही, जीव के उत्थान का रास्ता है। कर्म करके जीव का उत्थान करते जाना, जीवन का उद्देश्य है।

इन्द्रिय जगत आत्मज्ञान का विद्यालय है। यहां पर रहकर जीव अपने को आत्मज्ञान की विद्या से पूर्ण कर सकता है। इसलिए सारे अपूर्ण जीव इन्द्रियजगत में जन्म लेते हैं। विकास होते-होते जीव मनुष्य का शरीर धारण कर लेता है। पूरी सृष्टि में केवल मनुष्य, अपने में भावातीत क्षेत्र की शक्ति पिरो कर ईश्वरीय शक्ति से तरबतर करके, ईश्वर-स्वरूप बन सकता है।

आत्मज्ञान का रास्ता यह है कि मनुष्य कुछ समय निकालकर एकान्त में, अन्धेरे में, आंखे बन्द करके, किसी कुचालक (बैड कन्डकटर) पर, सुविधाजनक आसन में बैठकर, एक बार ईश्वर के किसी नाम को स्मरण करके, मन को स्वतन्त्र (Relax) छोड़ दे।

ऐसा करने से मन, भाव का क्षेत्र छोड़ देता है और भावातीत-क्षेत्र में स्नान करके, भावों के क्षेत्र में वापिस आ जाता है। अपने में भावातीत-क्षेत्र की शक्ति पिरोकर, क्रियाओं के क्षेत्र में स्थूल कर्म करे। इस पूरी प्रक्रिया को गीता (2.48) में श्रीकृष्ण ने तीन शब्दों; 'योगस्थ कुरू कर्माणि' द्वारा दर्शाया है। इस कर्म द्वारा साधक इन्द्रियजगत में ब्रह्म की शक्ति पिरोता है। ज्यों-ज्यों जिस साधक के वातावरण में जितनी ब्रह्मा की शक्ति पिरोती जायेगी, त्यों-त्यों साधक का जीवन अधिक सुखमय होता जाएगा। इस सिद्धान्त (Theory) के आधार पर जो साधक अपने जीवन को जितना सुखमय बनाना चाहे, बना सकता है। ❑

'होनी' और 'करनी'

प्रस्तुति : श्री गंगाधर बंसल (094160-41346)

हम जानते हैं कि बिना कर्म के किसी को कुछ नहीं मिलता। अतः कर्म माध्यम है : मन की इच्छाओं को पूरा करने का। हम यह भी जानते हैं कि यह सृष्टि दो भागों में बंटी है -शरीर के बाहर और शरीर के अन्दर। शरीर के बाहर का क्षेत्र 'करनी का क्षेत्र', है। मन का भ्रमण ही कर्म है। परन्तु शरीर के बाहर के क्षेत्र में मन केवल इन्द्रियों (Vehicles) के माध्यम से भ्रमण करता है। अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तो इन्द्रियों के माध्यम से जहां भी जाता है, बुद्धि के माध्यम से जो कुछ भी पाने की कोशिश करता है, पा लेता है। परन्तु हर चीज पाने की अपनी एक जगह है।

शरीर के अन्दर का क्षेत्र 'होनी का क्षेत्र' है। इस क्षेत्र में मन का भ्रमण 'होनी के क्षेत्र के कर्म' हैं। मनुष्य जिन इच्छाओं के साथ होनी के क्षेत्र में भ्रमण करेगा, उसकी इच्छाएं, होनी अपनी शक्ति के अनुसार पूरी करे या ना करे; परन्तु इच्छाओं की पूति के लिये मन का भ्रमण 'होनी के क्षेत्र' में जो कि शक्ति का क्षेत्र है, अति आवश्यक है।

अब हमें समझना है कि 'होनी का क्षेत्र' मात्र अपनी शक्ति के अनुसार इच्छाओं को पूरा करेगा; इसका क्या अर्थ है? इन्द्रियां और बुद्धि से परे क्षेत्र में विचारों का एक सागर है। सागर में मन के चेतस्तर का कोई ना कोई स्थान है।

मन का चेतस्तर, सागर की सतह से जितना दूर रहेगा और विचार उदगम् स्थान से जितना समीप होगा; अर्थात् सागर के धरातल से जितना समीप होगा, उतना ही मन की शक्ति अधिक होगी और यह शक्ति मन के कर्म की शक्ति होगी।

इसी कर्म शक्ति के आधार पर मन अपनी समस्त इच्छाओं को बिना किसी मेहनत के अर्थात् मात्र होनी की शक्ति के माध्यम से पूर्ण कर लेगा। मन की इस शक्ति को सन्त तुलसीदास ने ब्रह्म या हरि का प्रसाद कहा है। उन्होंने अपनी रामायण में लिखा है कि :-

जो इच्छा करिहों मन माही।
हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहि॥

दान का महत्व

प्रस्तुति : श्रीमती अनु जैन (भिवानी)

सत्पुरुषों को अपने दुःख की परवा ही नहीं होती। वे तो दूसरों के दुःख से ही दुःखी होते हैं। गोस्वामी तुलसीदास के अनुसार :

संत हृदय नवनीत समाना,
कहा कबिन्ह परि कहै न जाना॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता।
पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता॥

संत-हृदय की तुलना नवनीत से की, पवित्र-हृदय संत दूसरे के दुःख से द्रवित हो जाते हैं। संत पुरुष स्वयं विपत्ति का वरण करके दूसरे को सुख पहुंचाया करते हैं।

उनका जीवन होता ही है इसीलिये; नहीं तो उन आप्तकाम महात्माओं का जगत् के कर्म प्रपंच से क्या सम्बन्ध?

भूखे गरीब को अन्न, नंगे को कपड़ा, रोगी को दवा तथा पथ्य और निराश्रय को आश्रय जरूर दो। परंतु मन में ऐसा अभिमान कभी मत करो कि वह आश्रयहीन दरिद्र है और मैं उस पर उपकार करने वाला समर्थ कृपालु हूं।

शुभकर्म में भगवान् ने तुमको निमित्त बनाया है, यह तुम पर उनकी विशेष कृपा है।

सभी रूपों में भगवान् हैं। यह समझकर भगवत्पूजा की भावना से गरीब, अपाहिज और रोगी की खूब सेवा करो और

भगवान् ने इन रूपों में आकर तुम्हारी सेवा को स्वीकार किया, इसे अपना परम सौभाग्य समझो।

असल में तुम्हारे पास तुम्हारा अपना, है ही क्या? सभी वस्तुएं भगवान् की ही हैं। प्रभु की वस्तु प्रभु के अर्पण हो; और यह कार्य सुचारु रूप से और सुव्यवस्थित रीति से हो, यही तुम्हारा कर्तव्य है। कर्तव्य से चूकते हो तो तुम मालिक के अपराधी बनते हो।

बेईमान की लोक-परलोक-दोनों में दुर्गति होती है। यह सदा स्मरण रखो कि सब कुछ भगवान् का है और सब भगवान् के रूप हैं।

भगवान् की वस्तु भगवान् को, जब जिस रूप में जैसे जरूरत हो, उसी रूप में वैसे ही देने के लिए ये ही वह वस्तु तुम्हें सौंपी गयी है। इस सेवा के बदले में मालिक स्वयं तुम्हें अपना आत्मदान करनेवाले हैं। इसलिये ईमानदारी से सेवा करने में कभी मत चूको। ❏

ईश्वर दर्शन

—श्री हरि प्रकाश अकेला

एक नास्तिक ने आस्तिक से पूछा, क्या ईश्वर है? क्या उसे जगत की किसी दृश्यमान वस्तु के सदृश देखा जा सकता है? आस्तिक का पूर्ण विश्वास एवं श्रद्धा भाव से उत्तर था-अवश्य ही ईश्वर है और संसार की किसी भी दृश्यमान वस्तु की तरह उनको देखा जा सकता है।

पर देखना कौन चाहता है?

उन्हें वही देख सकता है जिसमें ऐसी तड़प हो जैसी पानी से निकाल दी गई मछली में। और जैसी स्वाति नक्षत्र में बरसने वाली बूंदों को पीने की चातक पक्षी में होती है। जैसे मछली जल के बिना तड़प-तड़प कर प्राण त्याग देती है; चातक पक्षी स्वाति नक्षत्र में बरसने वाली जल बून्दों को ही पीता है, अन्यथा प्यासा मर जाता है। वैसी ही तड़प यदि किसी के मन में ईश्वर के लिए हो : तो ईश्वर को उसे दर्शन देने हेतु बाध्य होना ही पड़ेगा। **ऐसे भक्त हैं कहां?** जिनमें इतनी तड़प हो।

भगवान कृष्ण के लिए मीरा की भक्ति ऐसी ही थी। कहा जाता है कि मीरा, न जाने कौन सा सुरमा अपनी आंखों में लगाती थी : कि आंखें बंद करके सलोने श्यामसुन्दर के ही दर्शन पाती थी।

अविचलित श्रद्धा तो ध्रुव के मन में नारायण को पाने के लिए थी। वे ब्रह्मावर्त्त में एक पैर पर खड़े होकर; ओ३म् भगवते वासुदेवाय नमः का जाप करते रहे। अंततोगत्वा विष्णु भगवान को उन्हें दर्शन देने हेतु बाध्य होना पड़ा।

प्रह्लाद ने अपने पिता हिरण्यकश्यप द्वारा बार-बार मारे जाने की इतनी पीड़ा सही थी कि श्रीहरि को नृसिंह रूप में स्तंभ विदीर्ण करके न केवल उन्हें दर्शन देना

पड़ा : वरन पापी हिरण्यकश्यप का वध भी करना पड़ा।

ऐसी ही पीर, कसक, चुभन या पीड़ा : जिनके मन में ईश्वर दर्शन के लिए होती है : उन्हें निश्चित रूप से कृपा करने वाले ईश्वर के दर्शन होते हैं। इस विषय में संशय नहीं करना चाहिए।

क्योंकि गीता में स्वयं श्रीकृष्ण ने कहा है – 'संशयात्मा विनश्यति' : अर्थात् संशय से ग्रस्त आत्मा विशेष रूप से नष्ट होती है, जबकि आत्मा अजर और अमर है, जिसे न आग जला सकती है, न पानी गला सकता है, और न हवा सुखा सकती है। ❑

परमात्मा का दूसरा नाम; ब्रह्म

प्रस्तुति : श्री रवि प्रकाश कौशिक (09467297254)

यदि किसी से प्रश्न करें कि जहां भाव भी नहीं है, वहां क्या होने की संभावना है? तो उत्तर यही होगा कि कुछ नहीं। यह कुछ नहीं, सर्वशक्तिशाली है। इसी को संसार परमात्मा के नाम से जानता है। कुछ नहीं से ही सब कुछ पैदा होता है। परमात्मा का दूसरा नाम ब्रह्म है। सारे अध्यात्म जगत की यह मान्यता है कि, ब्रह्म निर्गुण और निराकार है। न बदलने वाला संसार सूक्ष्म जगत होता है; और बदलने वाले संसार को इन्द्रिय जगत कहते हैं, जो कि स्थूल होता है।

इन्द्रिय जगत में पांच ज्ञानेन्द्रियां होती हैं और पांच कर्मेन्द्रियां होती हैं। ज्ञानेन्द्रियों की मदद से मन समस्त इन्द्रिय जगत को महसूस करता है; और कर्मेन्द्रियों की मदद से वह समस्त इन्द्रिय जगत में कर्म करता है।

स्वयं मन हमेशा सूक्ष्म जगत में रहता है और स्थूल जगत में अकेला कभी नहीं आता।

इसका अर्थ यह हुआ कि इन्द्रियां मन के यातायात का एक ऐसा साधन (Vehicle) है, जिसमें बैठकर मन तो सारे इन्द्रिय जगत को महसूस कर सकता हैं; परन्तु स्वयं कोई इन्द्रिय, मन को अनुभव नहीं कर सकती।

जो सूक्ष्मतम है, वह कुछ नहीं है; और उसी से सब कुछ है।

इससे यह प्रमाणित होता है कि सूक्ष्म स्थूल से हमेशा बलवान है; और यही पूरे समाज की मान्यता भी है।

सूक्ष्म जगत स्वयं मन का जगत है। परमात्मा द्वारा उत्पन्न हुआ है। मन अर्थात् जीव परमात्मा का अंश है, अर्थात् पुत्र है।

अत: जैसा स्थूल इन्द्रिय जगत में को दिखाई पड़ता है कि हर राजा के पुत्रों की सुविधाओं के लिए, हर स्तर के नौकर-चाकर नियुक्त होते हैं। उसी प्रकार से

परमात्मा के अंशों की सुविधाओं के लिए, परमात्मा ने जिन्हें नियुक्त किया, उन्हें संसार देवता कहता है।

उदाहरण के लिए वायु देवता समस्त ब्रह्मांड को वायु देते रहे हैं और देते रहेंगे। इसी प्रकार से सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अग्नि आदि सभी; वायु मंडल के समस्त जीवों को अपनी-अपनी शक्तियां प्रदान करते ही रहेंगे। और इसके लिए समस्त प्राणी उन देवताओं की पूजा करते रहेंगे, यही कर्म कौशल है।

सूक्ष्म जगत, शक्ति का भंडार है।

शक्तियों का भंडार ही, देवताओं का घर है। अत: यह निश्चित है कि सृष्टि की शक्तियां, सारे देवताओं में बंट गईं। ❑

इन्द्रिय जगत; अपूर्ण चेतनाओं का संसार

द्वैत जगत होने के कारण, इस जगत में रहने वाली जीवात्माएं, हमेशा ही शक्ति में अपूर्ण रहेंगी। इन्द्रिय जगत अपूर्ण चेतनाओं का संसार है। पराजगत शक्तिशाली चेतनाओं का संसार है। फिर भी इस संसार में रहने वाली, जीवात्माएं भी अपूर्ण हैं। इसीलिए ज्ञानियों के मुखार बिंद से यह बहुधा सुनने को मिलता है कि

ईश्वर ही समस्त देवताओं को शक्ति देता है और ब्रह्मांड को भी शक्ति देता है।

पराजगत के देवताओं का स्थूल रूप संसार में दिखता है। सभी अनुभव करते हैं कि इन्द्रिय जगत का जीवन तभी तक संभव है, जब तक शरीर के अन्दर सूक्ष्म संसार में जीवन है।

शरीर के अन्दर दो सूक्ष्म संसार है : भावों का क्षेत्र और भावों से परे का क्षेत्र। भावों से परे का क्षेत्र ही ब्रह्म तत्व (सृष्टि का सूक्ष्मतम तत्व) का सागर है।

मन भावों से परे होकर, इसी सागर में गोता लगाकर, वापिस पराजगत में विचरण कर, सभी देवताओं को शक्ति प्रदान करके, इन्द्रिय जगत के देवताओं को शक्ति प्रदान करता है। इन्द्रिय जगत के समस्त स्थूल देवताओं का सूक्ष्म रूप पराजगत में होता है। हमारे इन्द्रिय जगत के जीवन की भी यही अनुभूति है कि प्रकृति में उत्पन्न हर वस्तु छोटी से बड़ी होती है। ऐसा एक भी उदाहरण संभव नहीं, जो स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़े।

यह सत्य हमें बताता है कि स्थूल जगत के स्थूल देवताओं; जैसे बादल, वायु, सूरज आदि का सूक्ष्म रूप अवश्य होना चाहिए क्योंकि बिना सूक्ष्म के स्थूल संभव नहीं है।

परन्तु परमात्मा ने सूक्ष्म और स्थूल रूपों के संसार अलग-अलग कर दिए हैं। वे दोनों संसार इन्हीं शक्तियों के माध्यम से जुड़े हैं।

जैसा कि वनस्पति जगत का सूक्ष्म संसार पृथ्वी के अन्दर है; और स्थूल संसार पृथ्वी के बाहर, परन्तु सूक्ष्म, स्थूल का आधार है। इसी तरह दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसी प्रकार देवताओं का सूक्ष्म संसार-पराजगत और स्थूल संसार इन्द्रिय जगत, आपस में जुड़े हैं। इस तरह जीव के इन्द्रिय जगत का जीवन आधार, उसके शरीर के अन्दर होता है। इस तरह हम देखते हैं कि

''यथे पिंडे, तथे ब्रह्मांडे'', एक जीवन सत्य है।

भावों से परे जगत ब्रह्म तत्व का सागर है। यह ब्रह्मांड अनन्त सागरों से बना हुआ है। जैसे हवा का सागर, पानी का सागर, ठंडक का सागर, गर्मी का सागर, प्रकाश का सागर आदि। सागर का एक मूल गुण, निर्गुण निराकार तत्व के सागर में भी है। हर सागर की लहरें हमेशा आगे की ओर बढ़ती रहती हैं। ऐसा कोई सागर संभव नहीं है, जिसमें यह गुण न हो; भले ही वह निर्गुण निराकार तत्व का ही सागर क्यों न हो ? निर्गुण निराकार तत्व निरंतर आगे बढ़ते हुए इन अनन्त (आदिकाल में चौरासी लाख को मुहावरे के रूप में अनन्त के लिए प्रयोग किया गया) जड़ों के माध्यम से अपने को अनन्त रूपों और आकारों वाले अस्तित्वों में प्रकट किया। इस प्रकार से स्थूल जगत अनन्त किस्मों (वैराईटीज) के संसार के रूप में उत्पन्न हुआ।

इन जड़ों में ब्रह्म की शक्ति पिरोई, तो एक एक जड़ से एक एक पूर्ण जाति उत्पन्न हुई। जिस जड़ से जीव उत्पन्न हुआ, उसका नाम मन है

अर्थात् जिस मन में जिस अंश की ब्रह्म शक्ति पिरोई, उस अंश वाला जीव पैदा हो गया। ज्यों-ज्यों मन में ब्रह्म की शक्ति बढ़ी, त्यों-त्यों मन के शरीर में भी बदलाव आया। मात्र मनुष्य योनी के जीवन को सबसे अधिक कर्म करने की स्वतन्त्रता है। देवता तो जीवों के संसार के सहायक कर्म में ही लाखों-लाखों वर्ष व्यतीत कर देंगे, परन्तु अपने को निमित कर्मों से स्वतन्त्र करके अपनी इच्छानुसार कर्म करने की शक्ति को प्राप्त नहीं हो सकते।

मात्र मनुष्य अपनी स्वतन्त्रता का सदुपयोग करके अपने आने वाले प्रतिदिन को उज्ज्वल बना सकता है; और अपने को शक्ति से पूर्ण करके ईश्वर स्वरूप भी बन सकता है।

ज्यों-ज्यों मन में ब्रह्म तत्व को शकित पिरोती है, त्यों-त्यों ब्रह्म तत्व के गुण भी उभरते है, त्यों-त्यों ब्रह्म तत्व के गुण भी उभरते हैं। ब्रह्म के तीन गुण हैं सत्-चित्-आनन्द।

मन में सत् उभरने से मन, धीरे-धीरे अधिक दृढ़ निश्चय वाला होने लगता है।

चित् चेतना उत्पन्न करता है, अर्थात् मन को चैतन्य बनाता है। चैतन्य मन में महसूसियत की शक्ति प्रकट होती है और इस अनुभव शक्ति के सहारे अलग-अलग चेतना में अलग-अलग ज्ञान उभरता है।

ज्ञान मन का होना है। इस तरह हम देखते हैं कि मन की अनुभव शक्ति में जीवन का ज्ञान है। कहने का अर्थ है कि, जैसी चेतना वैसा ज्ञान। पूर्ण, चेतना में जीवन का पूर्ण ज्ञान है।

हमारी अनुभूति है कि इन्द्रिय जगत के विषयों के ज्ञान का रास्ता अत्यन्त कष्टदाई है, परन्तु अपने में चेतना का विकास करके, जीवन का ज्ञान उभारना अत्यन्त सरल है। थकाने वाला नहीं है; और मात्र जागते हुए गहरे आराम (Relax) से उभर आता है।

चेतना की अनुभव शक्ति ही आत्म प्रकाश है। और साधना द्वारा ज्यों-ज्यों हम अपने जीवन को उच्च स्तर की चेतना के प्रकाश से प्रकाशित करते हैं, त्यों-त्यों जीवन आत्म सुख से भरने लगता है।

आत्म प्रकाश से प्रकाशित मन की समस्याओं का हल, मन को बिना किसी प्रयास से मिल जाना है। धीरे-धीरे जीवन सरल और आनन्दमय होने लगता है।

सत् चित् आनन्द ब्रह्म दे, सेवा दे सुख खण्ड।
खण्ड अन्त में दुखद है, साधक ग्राह्य अखण्ड॥

(ध्यान माला-48)

जीवन के सारे सुखों का आधार (Foundation) सत् की शक्ति अखण्ड है। सम्पूर्ण सृष्टि में अलग-अलग प्राणियों की अनुभव की शक्ति तथा उनका आन्तरिक सुख, मन को ध्यान के समय प्राप्त, ब्रह्म-तत्व की देन है। ❑

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-65 : जड़ से लेता वृक्ष रस, फूले फले अघाय।
प्राणी का रस ब्रह्म है, सभी क्षेत्र हरियाय॥

यह सभी अच्छी तरह से जानते हैं कि पेड़ की जड़े; जमीन, खाद-पानी, धूप-हवा इत्यादि से एक रस तैयार करती हैं; और केवल उस रस द्वारा ही वृक्ष के सभी अवयव बनते और पुष्ट होते हैं। उसका मोटा तना, मोटी-पतली डालियां, शाखें, पत्तियां, फूल और फल भी केवल उस रस से ही बनते हैं।

मनुष्य और वृक्ष, दोनों ही प्राणी वर्ग में आते हैं। और दोनों के जीवन में बढ़ने फलने-फूलने के सिद्धान्त एक ही हैं, अलग-अलग नहीं। यह दूसरी बात है कि इन दोनों का जीवन-रस, भिन्न-भिन्न है।

पेड़ रूपी मनुष्य के जीवन की जड़, उसका मन है; और ब्रह्म जीवन ही रस है, जिसे मन ध्यान द्वारा उसके सम्पर्क में आकर प्राप्त करता है। यह रस मनुष्य जीवन के प्रत्येक पहलू को विकसित करता और हरा-भरा अर्थात् शान्त और सुखी बनाता है।

जीवन, ब्रह्मलोक का वृक्ष है। इसका मूल, जीव है। उसकी सेवा करके हम ब्रह्मलोक की पृथ्वी; अर्थात् मन की उपजाऊ शक्ति बढ़ाते हैं। इस सेवा करने के कर्म को ईश्वर का ध्यान (Meditation) कहते हैं। पिछले जीवन के कर्मों के आधार पर सभी को वर्तमान में एक जीवन मिलता है। जो जीवन मिलता है, उसका आधार, पिछले जन्म के कर्मों के आधार पर, छूटी हुई इच्छाएं होती हैं।

वे इच्छाएं ब्रह्मलोक की पृथ्वी के बीज होते हैं। जिस प्रकार से पृथ्वीलोक पर जो भी माली या किसान पृथ्वी को उपजाऊ बनाए रखने के लिए कर्म करता है। उसका वनस्पति जगत फूलता, फलता है। और स्वयं वह अघाता है, अर्थात् जीवन की संतुष्टि की ओर अग्रसर होता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति ध्यान के माध्यम से अपनी जीवात्मा को उपजाऊ बनाता है: उसकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए जिन परिस्थितियों की आवश्यकता होती है; होनी की शक्ति, समय आने पर, उन परिस्थितियों को स्वयं प्रदान करती है; और साधना में लिप्त हुए व्यक्ति की इच्छाएं कम से कम परिश्रम या बिना परिश्रम के पूरी होने लगती हैं।

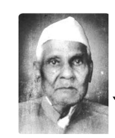

ऊपर लेखक यह बता चुका है कि मात्र बौद्धिक स्तर पर रहने वाला व्यक्ति आत्मा पर विश्वास क्यों करे? अब लेखक को यह बताना है कि जो विश्वास उसे जीवन के अनुभवों के आधर पर दिलाया गया, उस अनुभव को वह अपने जीवन में कैसे उतारे? आज के समाज के साधकों में यही कमी है कि वे शास्त्रों और पुराणों की पुस्तकों से न जाने कितना ज्ञान ले लेते हैं; लेकिन एक अंश भी अपने जीवन में नहीं उतारते। समाज में लाखों व्यक्ति मिल जाएंगे; जिनके घरों में वर्षों से रामायण का पाठ और गीता का अध्ययन होता चला आ रहा है। लेकिन एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं मिलता; जो गीता के किसी एक श्लोक या तुलसी रामायण की एक चौपाई अपने जीवन में उतार दे।

यदि कोई इसे जीवन में उतारने में सफल हो जाता है, तो उसकी आत्मा भी महान हो जाती है। जीवन, शरीर के अन्दर से बाहर के क्षेत्र में आता है। जैसे पेड़ का जीवन पृथ्वी के अन्दर से पृथ्वी के ऊपर आता है। इसीलिए किसी भी सिद्धांत को जीवन में उतारने के लिए उस सिद्धांत को आन्तरिक चेतना में लाना होगा। इस तरह हम

देख सकते हैं कि बिना आन्तरिक चेतना को प्राप्त हुए हम गीता या रामायण के किसी सिद्धांत (Theory) को अपने जीवन में उतारने में सफल नहीं हो सकते।

सत्य यह है कि जीवन के सारे सिद्धांत आन्तरिक चेतना में हैं। रामायण, गीता, शास्त्र और पुराण, आन्तरिक चेतना से निकले हैं। अत: यह कहना ही गलत होगा कि गीता के किसी श्लोक; या रामायण की किसी चौपाई को जीवन में उतारना है।

हमें मात्र पूर्ण आन्तरिक चेतना जागृत करनी है। हमने ऊपर देखा कि होनी आत्मा की शक्ति है। सूर्य कभी सूर्य की रोशनी और गर्मी से अलग नहीं हो सकता। इसलिए यदि सूर्य प्राप्त करना है, तो सूर्य की बढ़ती हुई रोशनी और गर्मी की ओर अग्रसर होना ही पड़ेगा। इसी प्रकार 'होनी' आत्मा की शक्ति से अलग नहीं हो सकती। अत:

एकान्त में अन्धेरे में, कोई आसान बिछा कर, सुविधाजनक आसन में बैठ जाएं। ऐसा करने से मन को इन्द्रिय सुख न मिलने के कारण, इन्द्रिय सुख से अलग होना आसान होगा। एक बार ईश्वर का नाम मन में याद करके, मन को छुट्टा (Relax) छोड़ दें। जिससे किसी भी तरह की प्रयत्नशीलता शून्य (Relax) हो जाए। इस तरह मन, करनी से होनी के क्षेत्र में विचरण करने लगेगा।

विचरण करते ही वह भावातीत (Transcendental) होकर जीव के क्षेत्र में जीवात्मा को शक्ति देने हेतु वापिस आयेगा। जीवन की यह प्रक्रिया मन के भटकने के रूप में प्रतीत होगी। ज्यों-ज्यों जीव में आत्म-शक्ति पिरोएगी; धीरे-ध ीरे मन शान्त होने लगेगा और लगभग जब आधे घण्टे के बाद ध्यान पर से उठेगा; यह शान्ति, ध्यान की उपलब्धि के रूप में प्रतीत होगी।

शान्ति का अर्थ है, अन्दर की गहराइयों में मन का विचरण। आन्तरिक क्षेत्र की गहराइयों की हर पर्त में 'होनी' का ज्ञान है। यह ज्ञान जानने के स्तर का न होकर, 'होनी' के स्तर पर है। और हमारी इच्छाओं को फलित करता है। यह ज्ञान ही आत्म-ज्ञान है। या यह कहें कि कम-से-कम परिश्रम के माध्यम से, बड़ी-से-बड़ी इच्छाओं की

पूर्ति करने वाली आत्म-ज्ञान की शक्ति है। पूर्ण आत्म-ज्ञान में पूरे ब्रह्माण्ड को नियन्त्रण में रखने की ताकत है।

हमारे शास्त्र और पुराण में जहां उच्च-से-उच्च कोटि के महात्माओं के जीवन का दर्शन प्राप्त है; ऊपर लिखे हुए सत्य के प्रमाण हैं। उदाहरण के लिए महर्षि वाल्मीकि, महर्षि व्यास, अष्टावक्र, वशिष्ठ गुरु; और कलयुग में संत तुलसीदास, कबीर दास, सूरदास, गौतम बुद्ध, शंकराचार्य और परम हंस; जैसे कितने महात्माओं का जीवन-दर्शन इस बात का प्रमाण है; कि ब्रह्माण्ड को बड़ी से बड़ी चीज, प्रयासहीनता (Meditation) के माध्यम से उपलब्ध हो सकती है। लेखक साधकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहेगा कि

प्रकृति के नियमानुसार; जो वस्तु जितनी उच्च कोटि की होती है: परमपिता परमात्मा की कृपा और उदारता के कारण; उनके पुत्र रूपी जीवात्माओं को होनी द्वारा उपलब्ध हो जाती है।

हर जीव का जीवन स्तर, ब्रह्मलोक का एक पेड़ होता है। जीव शरीर के अन्दर होता है। जीवन शरीर के बाहर होता है। जैसे पेड़ जमीन के बाहर होते हैं। परन्तु वृक्षों को जीवन देने वाला 'रस' तो पृथ्वी के अन्दर रहता है। पृथ्वी यदि बंजर हो, तो बीज किसी भी वृक्ष को जन्म नहीं दे सकता। यही ज्ञान किसान और माली के पास रहता है। इसीलिए वह पृथ्वी को खाद और पानी देकर बंजर होने से बचाए रखता है। अत: यह प्रमाणित करता है कि

मात्र पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति में यह ज्ञान है कि वह अलग-अलग बीज को; कैसे अंकुरित करके पेड़ों के तना, डाली, पत्ती, फूल और फल का निर्माण करे? बिल्कुल इसी प्रकार से यदि ब्रह्मलोक की जमीन बंजर हुई तो ब्रह्मलोक के पेड़ों का निर्माण भी असंभव होगा। अर्थात् जीवन हरा-भरा नहीं होगा।

हर जीव के पिछले कर्मों के आधार पर वह इस जन्म में बाल्यावस्था, किशोर अवस्था, यौवन अवस्था, प्रौढ़ अवस्था एवं वृद्ध अवस्था की इच्छाएं लेकर जन्म लेता है। इन इचछाओं की पूर्ति ही वृक्षरूपी जीवन के फल हैं। इनके फलित होने से ही जीवन सुखदायी होता है। बिना कर्म के कुछ भी नहीं मिलता। साधकगण परिचित हैं कि कर्म मात्र दो तरह के हैं। शरीर के बाहर; और शरीर के अन्दर।

आन्तरिक जगत के कर्मों द्वारा, आन्तरिक चेतना उभरती है। और इन्द्रिय सुख के साथ आन्तरिक सुख भी उभरता है। या यह कहें कि सच्चिदानन्द शक्ति उभरती है। मात्र अलग-अलग जीवों में उभरती हुई सच्चिदानन्द शक्ति में, उस जीव की इच्छाओं को फलित करने का ज्ञान है; और यही आत्म ज्ञान है।

ज्यों-ज्यों सच्चिदानन्द शक्ति जीव में उभरती है, जीवन की अलग-अलग आयु की इच्छाओं को 'होनी की शक्ति' द्वारा फलित करने हेतु अनुकूल परिस्थितियां स्वयं उत्पन्न होने लगती हैं। ये परिस्थितियां ही ब्रह्मलोक के पेड़ के तने हैं। इन्हीं परिस्थितियों से जीवन, इच्छाओं को फलित करने की ओर अग्रसर होता है। जिस प्रकार से हमने ऊपर देखा कि तना, डाली, पत्ती का निर्माण करने का ज्ञान मात्र पृथ्वी की उपजाऊ आंतरिक शक्ति में होता है। उसी प्रकार से जीव की इच्छाओं को फलित करने का ज्ञान मात्र सच्चिदानन्द शक्ति में है। जो मन में ब्रह्म तत्व पिरोने के बाद मात्र मन में उभरती है। इच्छाएं भी मन में होती हैं। अत: यह शक्ति सरलता से इच्छाओं को मिल जाती है; और जीव, आत्म ज्ञान की मदद से परिश्रम रहित जीवन जीकर, अपनी इच्छिओं को भोग लेता है। सारांश यह निकलता है कि

आत्म-ज्ञान वह ज्ञान है कि: जिस ज्ञान के माध्यम से वह कम-से-कम परिश्रम द्वारा, या परिश्रम रहित होकर: जीवन की अधिक-से-अधिक इच्छाओं को, या समस्त इच्छाओं को फलित करने में सफल हो।

यह अलग-अलग जीवों के आत्म ज्ञान पर निर्भर करेगा कि वह कितनी बड़ी-बड़ी इच्छाएं परिश्रमरहित होकर फलित कर सकता है? यह ज्ञान मात्र होने के स्तर पर होता है, जानने के स्तर पर नहीं होता। इसलिए सन्त तुलसी दास ने कहा है :-

जो इच्छा करिहौं मन माहीं।
हरि प्रताप कछु दुर्लभ नाहीं॥

उपरोक्त चौपाई उनके शब्दों में: आत्म-ज्ञान की उनकी अनुभूति है। ऊपर लेखक ने जो भी लिखा: उसे ऐसे भी व्यक्त किया जा सकता है कि साधक द्वारा उभारी हुई सच्चिदानन्द शक्ति ही ब्रह्मलोक की पृथ्वी की खाद है। आन्तरिक चेतना को भी ब्रह्मलोक की पृथ्वी की खाद कह सकते हैं; और उभरते हुए आन्तरिक आनन्द को भी। ये सत्य को व्यक्त करने के अलग-अलग भाव हैं।

आन्तरिक चेतना की जागृति में, बिना किसी परिश्रम के, जिन प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है; वे सब आत्म-ज्ञान के अन्तर्गत होते हैं। ❑

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- (बीस) रुपये मनी- आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

–Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001
Mobile : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 5 बजे से सायं 7 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-सुरेश कुमार गुप्ता
866, सेक्टर 3, अर्बन एस्टेट, रोहतक-124001
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER